HindiTech
A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal

बोलियाँ ही हिंदी की मूल पूँजी हैं।

(देश के समाजभाषाविद एवं वर्तमान में भारतीय भाषा संस्थान, मैसुरू के कार्यकारी निदेशक प्रो. राजेश सचदेवा से भाषा और समाज के अनेक पक्षों से जुड़ी अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी से बातचीत के मुख्य अंश।)

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी- भाषा और समाज के अंत:संबंधों के परिप्रेक्ष्य में हिंदी की बहुस्तरीय बहुभाषिकता की बारे में आपकी क्या राय है?

राजेश सचदेवा– भाषा और समाज में जो संबंध आप जोड़ना चाहते हैं, उसे भौगोलिक दृष्टि से देखा जाना चाहिए। साथ ही उसमें यह भी देखना चाहिए कि कौन से शिक्षित लोग हैं, जो मानक भाषा का प्रयोग करते हैं और कौन-सा ऐसा वर्ग है, जहाँ तक मानक रूप नहीं पहुँच पा रहा है। एक स्वस्थ समाज वही होगा, जो अपनी बोली के ज्ञान के साथ मानक रूप की ओर बढ़े। उसका विकास तो हो, लेकिन अपनी जड़ों से भी न कटे। वहाँ के मुहावरे-लोकोक्तियों के बारे में उसे जानकारी होनी चाहिए। यदि वे नहीं जानेंगे, तो और कौन जानेगा। गाँव के लोगों को, जो सिर्फ बोलियों का प्रयोग करते हैं, उन्हें लोग गँवार मानते हैं, शिक्षित वर्ग के साथ बोलियों को नहीं जोड़ना चाहते हैं, जबकि शिक्षित वर्ग असली शिक्षित वर्ग तभी होगा, जब वह अपनी जड़ों से कटे बिना विकास करेगा और अपनी बोली को साथ लेकर चलेगा। यही वर्ग जब अपने ग्रामीण परिवेश में दुबारा आएगा, तो बाकी लोगों को भी द्विभाषिक बनाने की कोशिश करेगा। इस तरह विकास दोनों तरफ से होगा। इस पूरे संदर्भ में हिंदी अपने आप को समृद्ध करेगी।

जहाँ तक हिंदी की वर्तमान स्थिति का सवाल है, तो किसी भाषा को मानकता की प्रवृत्ति से बचना चाहिए। इसके कारण हम लोग पहले ही हिंदी का बहुत नुकसान कर चुके हैं, क्योंकि हिंदी में पहले

अरबी-फास्सी का जो अंश था, वह पाकिस्तान के बँटवारे के साथ समाप्त होने लगा। इससे न सिर्फ शब्दावली के स्तर पर, बल्कि औच्चारिक क्षमता के स्तर पर भी हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाएँ कमजोर हुई हैं। हम लोगों को तलत महमूद और मुहम्मद रफी के गानों में प्रयुक्त शब्दों का न तो परिवेश समझ में आता है और न ही उन शब्दों के अर्थ, हम न सिर्फ कट गए हैं, बल्कि बँट हैं. ये जो राजनीति के कारण भाषा पर प्रभाव पड़ा, वह भाषा के लिए अच्छा नहीं रहा। शैक्षिक संस्थानों में मानकता पर बल दिया जाता है, जबकि आज मीडिया में उसका परस्पर विरोधाभाषी स्वरूप भी दिखता है, जिसमें अनेक दूरदर्शन धारावाहिकों में क्षेत्रीय बोलियों- हरियाणवी, भोजपुरी और अवधी के शब्दों की लोकप्रियता है। यह एक अच्छी बात है। इससे भाषिक संतुलन बनाने में सहायता मिलती है। इस प्रकार अलग-अलग बोलियों का सहज एवं स्वीकार्य ढंग से हिंदी में प्रवेश हो रहा है और हिंदी की विविधता को पेश करने में मीडिया अहम भूमिका निभा रही है और यह हिंदी के लिए अच्छी बात है। आजकल भाषा के खतरे की बात तो होती है, लेकिन बोलियों के खतरे की बात कोई नहीं करता। यहाँ तक कि १६६१-६६ में यूनेस्को की, जो सूची बनी थी इसमें हिमाचल आदि में बोली जाने वाली दस बोलियों के लुप्त होने का खतरा बताया गया था। बोलियाँ बोली जाती हैं, लिंखी नहीं जातीं। बोलियाँ ही हमारी पूँजी हैं, इसलिए हमें और अच्छे ढंग से इसके बारे में सोचना चाहिए। इन सबके साथ ही हिंदी में कई धाराएं एक साथ चलती है। कहीं अंग्रेजी शब्दों का बाहुल्य है, तो कहीं उर्दू के शब्दों पर जोर दिया जाता है, कहीं पश्चिमीकरण है तो। कहीं केंद्रीयकरण का भी बोध काम करता है और हिंदी इन सबके साथ चलती है। हिंदी की जिस बहुभाषिक स्थिति की बात आप कर रहे हैं, वे सब हिंदी की जरूरत हैं।

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी- भाषा की अस्मिता के आधार पर किसी सत्ता का निर्माण समाज के लिए किस सीमा तक उचित है?

राजेश सचदेवा– इसमें तीन प्रमुख बातें हैं, पहली यह कि एक देश के निवासी होने के बावजूद लोगों की एक क्षेत्रीय पहचान बनती है, तदनुरूप भौगोलिक पहचान भी बनती है और इन्हीं आधारों पर भाषा की भी पहचान बनती है। दूसरी बात यह है कि इस पूरे क्षेत्र में एक ही भाषा की परिधि में काम करने का मौका मिलता है। जो अनपढ़ लोग हैं या जिनको हिंदी और अंग्रेजी नहीं आती, उनको एक क्षेत्र में आपस में जोड़ने के लिए संप्रेषण का उच्चतम स्वर मिलता है और तीसरा यह कि राज्य से बाहर के लोग आकर सरकारी नौकरी पाने के लिए स्वयं का दावा न पेश कर सकें, इसीलिए इसकी व्यवस्था होती है कि सरकारी नौकरी पाने के लिए संबंधित राज्य की जो राजभाषा होगी, उसे जानना ही होगा। लोग आकर व्यवसाय करें, भ्रमण करें इसकी स्वतंत्रता एक भारतीय होने के कारण किसी को भी है, पर सरकारी नौकरी पाने से रोकने के लिए कहीं-कहीं इस तरह की कोशिशें होती हैं। कर्नाटक का उदाहरण हमारे सामने है। यहाँ राज्य सरकार में नौकरी पाने के लिए कन्नड़ का ज्ञान आवश्यक है। इसमें समस्या तब आती है, जहाँ भाषायी अल्पसंख्यक होते हैं। इसी कर्नाटक में हिंदी भाषी भी हैं, तमिल, तेलुगु, मलयालम, पंजाबी और सिंधी भी हैं। उनके लिए क्या सोचा गया? यह विचारणीय है। भारत में अभी भी भाषायी अल्पसंख्यकों के साथ न्याय नहीं हुआ है।

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी- पश्चिम में भाषा की वर्गीय चेतना पर विचार किया गया है। भारत में यदि इसे देखा जाए, तो आज दलित और स्त्री दो वर्ग हैं. जो व्यवस्था की मुख्य धारा से वंचित थे तथा अब बे चिंतन के केंद्र में हैं तथा इसी के आधार पर समाज की अधिक्रमिकता भी बनती दिख रही है। इसमें भाषा की भूमिका पर आपकी राय क्या है?

राजेश सचदेवा– यह तो भाषा का स्वभाव ही है और भाषा क्षेत्र के अनुसार अपना रूप ढालती रहती है और उसमें लिंग का भी फर्क पड़ना स्वाभाविक है। कई बार तो व्यक्ति की आवाज सुनकर उसका सामाजिक स्तर समझ में आ जाता है। जहाँ तक दलिंत वर्ग का सवाल है, तो यह सही है कि इनकी पहचान अलग ढंग से हुई है। इनका सामाजिकीकरण ही अंलग ढंग से रहा है। उनके परिवेश

में कौन लोग हैं, कौन उनके साथ उठता-बैठता है और कौन इनको अपने साथ बैठाता है, ये सब बातें मायने रखती हैं। इनकी बोली में इनका ही नहीं, अन्य जो उनके साथ रहते थे, उनका भी इतिहास है। भाषा में समाज का सबल और निर्बल दोनों पक्ष- सामने आ ही जाते हैं। उत्तर भारत के गाँवों के बारे में एक लेख आया था। इसमें यह कहा गया था कि कुछ वर्ग ज़ और ज, स और श, क और क़ के उच्चारण में भेद नहीं कर पाते हैं। इस तरह से उनकी बोली से हमें मालूम हो जाता है कि आदमी शिक्षित है या किस वर्ग का है। जाति के आधार पर जो समाज होता है उनकी बोली में भी यह सब स्पष्ट होता है। ये भी बताया गया कि ऐसे लोगों में स्वनियमों की संख्या कम थी, जबकि सवर्ण जातियों में अधिक थी। जहाँ तक साहित्य का सवाल है, तो यह देखना होगा कि इनको लिखने वाला कौन है, दलित वर्ग लिख रहा हैं या स्त्रियाँ खुद लिख रही हैं। वैसे स्त्रियों की कुछ अपनी बोली होती है, गाली-गलौज की भी इनकी अपनी शब्दावली होती है। उनका अपना विशिष्ट ढंग होता है। हमारे परिवारों में साथ में रहने के बावजूद उनकी अपनी बातचीत होती है। कुछ चीजें हैं, जो औरतें ही कहतीं हैं। इस तरह भाषा के आधार पर सामाजिक स्तर को देखा जा सकता है।

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी- भाषा और बोली में मूल अंतर क्या होते हैं? क्या सत्ता के संरक्षण मात्र से किसी बोली का रातोंरात भाषा बन जाना हिंदी के लिए उचित होगा? क्योंकि हिंदी के बारे में कहा जाता है कि यह एक बहुभाषिक भाषा है।

राजेश सचदेवा– असल में भाषा और बोली में अंतर नहीं किया जा सकता। हम ऐसा कह सकते हैं कि कोई भाषा ऐसी नहीं है, जिसकी कोई बोली न हो और ऐसी कोई बोली नहीं हो सकती, जो किसी भाषा-परिवार से संबद्ध न हो। एक भाषा की कई बोलियाँ हो सकती हैं, पर वही बोलियाँ कई भाषाओं से संबद्ध नहीं हो सकतीं। एक बोली को एक भाषा के साथ ही जोड़ा जाएगा, पर एक भाषा को कई बोलियों से नहीं जोड़ा जाता है।

हिंदी की कुछ बोलियां ऐसी हैं, जिनका पता नहीं चल पाता है कि ये हिंदी से जुड़ी हैं या पंजाबी से। 'कांगरी' को हिंदी के साथ जोड़ दिया गया है। इसमें न, नु, दा, जैसे बहुत सारे ऐसे अक्षर हैं, जिन्हें देखकर लगेगा कि ये पूरी तरह पंजाबी की निशानी हैं, हिंदी से इसका कोई संबंध नहीं है। असल में राजनीतिक दृष्टिकोण से उसे हिंदी में लगा दिया गया, क्योंकि हिमाचल की आधिकारिक भाषा हिंदी है। भारत में इस तरह से भी भाषा और बोली के संबंधों को जोड़ा गया है।

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी- वर्तमान में हिंदी का संपर्क-भाषा के रूप में प्रयोग को आप कैसे देखते हैं?

राजेश सचदेवा– हिंदी के प्रति कदाचित जो नफरत दिखती है, वह सिर्फ हिंदी के खिलाफ ही नहीं है, वो तो आपस में एक भाषा बोलने वालों के बीच भी है। नफरत की यह दीवार तो किसी और कारण से है। इस संदर्भ में जिस तमिलनाडु का उदाहरण दिया जाता है, वहाँ के एक भाषाविज्ञान विभाग में मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के एक कार्यक्रम के तहत गया था। वहाँ कुल २३ विद्यार्थी थे। उनसे पूछा कि आप में से कितने लोग ऐसे हैं, जो हिंदी जानते हैं, तो सिर्फ तीन हाथ उठे, जो ये मानने को तैयार थे कि वे थोड़ी-बहुत हिंदी जानते हैं। फिर मैंने पूछा कि आप में से कितने लोग ऐसे हैं, जो यह चाहते हैं कि उनके बच्चे भी हिंदी जानें। तब धीरे-धीरे २३ के २३ हाथ उठ गए, मतलब ये है कि जिनको हम सोचते हैं कि वे हिंदी विरोधी हैं, वहाँ भी स्थिति ऐसी नहीं है, जैसा हम सोच रहे हैं। हिंदी फिल्में दक्षिण में वैसे ही लोकप्रिय हैं, जैसे कि वहाँ के इडली, डोसा उत्तर में लोकप्रिय हैं।

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी- हिंदी में मौलिक ज्ञान की वर्तमान स्थिति को आप कैसे देखते हैं?

राजेश सचदेवा– आज उच्च शिक्षा में हिंदी का बहुत प्रयोग नहीं हो पा रहा है। इस लिहाज से सारी भारतीय भाषाओं में कुछ न कुछ कमी है। इसी को दूर कले के लिए 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' की स्थापना की गई है। इसके माध्यम से सारी भारतीय भाषाओं में अलग-अलग विषयों पर पुस्तकों

का अनुवाद होगा। इसमें अनुवाद एक माध्यम होगा और भाषा के कारण कोई रुकावट न हो यही लक्ष्य है।